ईश्वरीय आनन्द की अनुभूति

संसार में विविध प्रकार के राग और रंग, साज और संग, रूप और रस, दृश्य और स्पर्श तथा गीत और गन्ध हैं और इनसे मनुष्य को नाना प्रकार के अनुभव होते हैं। मनुष्य के जीवन-काल में सफलता, यश, धन-सम्पदा आदि की प्राप्ति की अनेक परिस्थितियाँ आती हैं और अनेक प्रकार के स्वजनों से उसका मिलन, सम्बन्ध अथवा सम्पर्क होता है और इनसे भी उसे अनेकानेक प्रकार के अनुभव उसे होते हैं। कभी उसे हर्ष-उल्लास, सुख-सुविधा या शान्ति-विश्रान्ति का अनुभव होता है तो कभी कौतुक-आश्चर्य या रस-रास का। परन्तु इन सभी से विलक्षण, विशेष, श्रेष्ठ एवं कल्याणप्रद अनुभव इश्वरीय आनन्द का अनुभव है। इश्वरीय आनन्द प्रभु-मिलन से होता है और प्रभु-मिलन ही सबसे सुन्दर और सु-मधुर मिलन है। वही सबसे बड़ा कौतुक एवं आश्चर्य भी है, तभी तो मनुष्य उस अनुभव के समय अवाक् हो जाता है और उसकी ज»ा उसका वर्णन नहीं कर सकती। वह ऐसा सुख है कि जिसके आगे संसार के सभी सुख फीके हैं; तभी तो राजा भरतृहरि, राजा गोपीचन्द आदि राजाओं ने उसे पाने के लिए अपना राज्य और अपने महल-माड़ी भी छोड़ दिये। उस आनन्दानुभूति में इनता हर्ष-उल्लास है कि उसे मन नाच उठता है और नाचता ही रहता है कि उसे बीते हुए दुःख की धुन्धली स्मृतियाँ भी नहीं आतीं। जिसे ईश्वरीय मिलन का साज आ जाता है, उसके लिये सभी साज बज उठते हैं और वह सभी राज जान जाता है। जिसे ईश्वरीय आनन्द की सुगन्धि प्राप्त हो जाती है उसका जीवन-पुष्प दिव्य गुणों से सुगन्धित हो उठता है; उस पर लोग फूल चढ़ाने की कामना करते हैं। उसका आत्मिक रूप ऐसा हो जाता है कि जन-जन उसके दर्शन को दौड़ते हैं। उस पर ज्ञान-रंग ऐसा खिल उठता है कि बस, वहार आ जाती है और सभी के जीवन का रंग-ढंग बदलना शुरू हो जाता है। परन्तु प्रश्न यह है कि ईश्वरीय आनन्द का अनुभव हो कैसे?

अनुभव के आधार

हम देखते हैं कि अनुभव चाहे किसी प्रकार का क्यों न हो उसका आधार मुख्यतः सात बातों पर होता है। हम उन सातों का यहाँ उल्लेख कर रहे हैं-

(1) निश्चयात्मक ज्ञान- पहले तो मनुष्य को यह ज्ञान होता है कि अमुक वस्तु से उसे अमुक प्राप्ति होगी अथवा अमुक व्यक्ति से उसे फलाँ सुविधा, सुख या सहयोग मिलेगा। उदाहरण के तौर पर उसे पता होता है कि मिठास चीनी से या शर्करा वाली वस्तुओं ही से प्राप्त होगा या खट्टापन इमली द्वारा उपलब्ध होगा। इसी प्रकार उसे यह ज्ञात होता है अथवा यह ज्ञान उसे लेना पड़ता है कि अनुक दुकान से अनुक वस्तु उपलब्ध होगी अथवा अमुक व्यक्ति अमुक रोग का विशेषज्ञ है या फलाँ मनुष्य फलाँ विषय का वकील है, आदि। इसमें उसे तनिक भी संशय नहीं होता है कि मिठास उसे चीनी से मिलेगा न कि नमक या इमली से और कि रोग का निदान डाक्टर द्वारा होगा न कि किसी हलवाई द्वारा। इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य को भी पहले यह निश्चयात्मक ज्ञान होना चाहिये कि ईश्वरीय आनन्द उसे ईश्वर ही से प्राप्त होगा, किसी भी मनुष्य से नहीं। उसे यह बोध हो जान चाहिये कि ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है और उस तक कैसे पहुंचा जाय ताकि ईश्वरीय आनन्दानुभूति की प्राप्ति उसे हो सके।

(2) विषय-ग्रहण- केवल यह जान लेने से कि मिठास चीनी से उपलब्ध होता है, मिठास का अनुभव नहीं हो जाता बल्कि चीनी को ग्रहण करना पड़ता है। जिस व्यक्ति से हमें जो सुख-सुविधा मिल सकती है, उसकी केवल जानकारी ही से हमारे उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती बल्कि उससे सम्पर्क करना पड़ता है। मानसिक तौर पर भी जिस विषय के चिन्तन से हमें हर्ष अनुभव होता है उस विषय को हमें मन में ग्रहण करना पड़ता है। यदि नेत्र दृश्य को ग्रहण न करें, जि»ा रस का ग्रहण न करे या कान संगीत को ग्रहण न करें तो उस-उसकी अनुभूति नहीं होती। विशेष बात यह है कि इन्द्रियों का यदि अपने-अपने विषय से सम्पर्क हो भी जाय तो भी जब तक मन उसका ग्रहण न करे तब तक मनुष्य को उसका उनुभव नहीं होता। ठीक इसी प्रकार, ईश्वर को जान लेने पर मन द्वारा उसका ग्रहण आवश्यक है। यदि कन किन्हीं ऐन्द्रिय विषयों के ग्रहण में तत्पर है अथवा किन्हीं व्यक्तियों के चिन्तन में लगा हुआ है तो उस द्वारा ईश्वर का ग्रहण न होने से उसे ईश्वरानुभूति नहीं हो सकती। अतः इस सर्वश्रेष्ठ अनुभूति के लिये ईश्वर से मानसिक सम्पर्क स्थापित करना जरूरी है।

हम नित्यप्रति देखते हैं कि जब कोई मनुष्य श्रेष्ठ संगीत के कार्यक्रम का रस लेने के लिए बैठा हो, तब यदि कोई व्यक्ति आ कर उससे बात करने लगे और इस प्रकार उसका अवधान (Aूाहूग्दह) संगीत से हट कर बात को ग्रहण करने में लग जाये तो वह संगीत का रस का अनुभव नहीं कर सकता। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति किसी सुन्दर बाग-बगीचे से गुजर रहा हो परन्तु उसके मन में उस समय व्यापार सम्बन्धी किसी चिन्ता का ग्रहण हो तो वह वहाँ के सुन्दर दृश्य का या व वहाँ की भीनी-भीनी सुगन्धि का रस नहीं ले पाता। ठीक इसी तरह, ईश्वरानुभूति के लिये भी मन द्वारा ईश्वर के गुणवाचक नाम धाम, रूप-अनुप आदि का ग्रहण आवश्यकीय है।

(3) विचार-तंरग- मनुष्य जब किसी विषय या व्यक्ति से सम्पर्क करता हैं, तब उसी के बारे में ही उसके मन में विच्ार चलने लगते हैं, तभी उसे उसकी अनुभूति होती है। जब दो सखा परस्पर मिलते हैं तो एक-दूसरे के बारे में उनके मन में प्रेम-तरगें उठती हैं। तभी वे प्रेम-विभोर होकर उसका अनुभव कर पाते हैं। एक व्यक्ति जब फलों का रस पीता है तो उसके मन में यह विचार तरंगें चलती हैं कि यह सेब और संतरे का रस है, मीठा है, स्वास्थ्यप्रद है, आदि-आदि। दो सम्बन्धी मिलते हैं तो वे भी इन्हीं विचारों में होते हैं कि-यह व्यक्ति ंफलां नगर से आया है, यह मेरा चचेरा भाई है, आजकल डाक्टर का काम करता है, स्वभाव से यह शीतल और मधुर है, मुझसे इसकी प्रीति है, यह समय पर सहयोग देने वाला व्यक्ति है, धनवान होने पर भी यह नम्र स्वभाव का है, आदि-आदि। इसी प्रकार, ईश्वरीय मिलन द्वारा ईश्वरीय आनन्द का अनुभव करने के लिए भी ईश्वर के मनन-चिन्तन (श्ग्ूर्ीग्दह) की आवश्यकता है। 'ईश्वर ज्योतिस्वरूप है, वह परमधाम का वासी है, वह परम पवित्र है, सर्वशक्तिमान है, प्रेमस्वरूप है" आदि-आदि विचार-तरंगें मन में चलाने से हम आनन्दानुभूति प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार की विचार-तरंगें, भाव-तरंगें, प्रेम-तरंगें को चलाना ही योगारम्भ है। यह अनुभूति तक पहूंचने की सीढ़ी है। ईश्वर तक पहूंचाने वाली यही `प्रेम गली' है। यही सच्ची यात्रा हैं।

(4) वातावरण से अलगाव अथवा वातावरण की अनुकूलता- जिस विषय को हम ग्रहण करते हैं, उस विषय, वस्तु अथवा व्यक्ति के प्रति मन में विचार-तरंग या भाव-तरंग चलाने से हमारा मन आस-

पास की वस्तुओं से या अन्य व्यक्तियों से अलग हो जाते है, अर्थात उसका ध्यान उनसे हट कर ग्रहित विषय ही का मनन-चिन्तन करने लगता है। यदि वह आने-जाने वाले अन्य व्यक्तियों की ओर भी ध्यान देता है अथवा अन्य ध्वनियों को भी सुनता है तो उसको ग्रहीत वस्तु का घना (घ्हूहे) अनुभव नहीं हो पाता, अथवा उसका अनुभव सतत-निरन्तर या अटूट एवं एकरस नहीं होता बल्कि परिच्छिन्न या टूक-टूक होता ह।

हाँ वातावरण को अनुकूल, सहायक या पे्ररक बनाया जा सकता है। ऐसे गीत अथवा संगीतका प्रयोग किया जा सकता जो हमारे मन में ईश्वर-विषयक ही विचार-तरंगें, भाव-तरंगें और प्रेम-तरंगें उत्पन्न करे। ऐसा प्रकाश किया जा सकता है जो प्रकाश स्वरूप परमात्मा ही की और हमारे मन को ले जाये और शेष वातावरण पर हावी हो जाय। सामने किसी ऐसे ही व्यक्ति को आसनस्थ किया जा सकता है जो स्वयं भी ईश्वर से सम्पर्क स्थापित किए हुए हो ताकि उसे देख कर हमारा मन भी इधर-उधर जाने की बजाय ईश्वर ही का ग्रहण करे।

(5) स्मृति, चेतना अथवा अवस्थिति- जब हम किसी मनोहर दृश्य को देख रहे होते हैं तो हमें केवल वह दृश्य ही याद होता है, शेष सब भूल जाता है। जब हम कोई श्रेष्ठ गीत सुन रहे होते हैं या नाटक देख रहे हों तब हमारा उस से एकाकार हो जाता है। उस समय हमें यह याद नहीं होता कि हमारी आयु कितनी है या हमारे घर में कितनी मेजें और कितनी कुर्सियाँ हैं। जब हम किसी प्रियवर से मिलते हैं तो सुधबुध को खो बैठते हैं और, बस, यही स्मृति रहती है कि हम अपने स्नेही सखा के पास बैठे हैं। 'एक में, दूसरा वह, तीसरा न कोई"- उस समय ऐसी स्थिति होती है। उस समय यदि कोई तीसरा आ जाय तो वह विघ्नरूप होता है। इसी प्रकार, बस ईश्वर ही के पास हम स्वयं को टिका हुआ स्मरण करें और इसी स्मृति ही को अपना आसन बना लें। प्रभु-मिलन की यही रहस्यमयी युक्ति है। ईश्वरीय आनन्दानुभूति की सारी सफलता इसी पर आधारित है। इसी स्मृति में किसी देहधारी का प्रवेश न हो, ह·ी-मांस वाले जन्म-मरण और विकारधीन किसी प्राणी का इस में आगमन न हो। सात-समुन्दर पार जो प्रभु का देश है, जिसे परमधाम कहते हैं, उस प्रकाश-मन्दिर में प्रवेश पाने की यही विधि है।

तम्मयता- लौकिक अनुभव की भी पराकाष्ठा तभी होती है जब मनुष्य रसास्वादन की क्रिया में स्थिर मन वाला हो जाता है। प्रेम की अनुभूति में भी ऐसा ही होता है कि मनुष्य प्रेम-विचारों में निमग्न होता हुआ, प्रेमी की स्मृति में तन्मय हो जाता है। इसी प्रकार आनन्दानुभूति भी मनुष्य पूर्णरूपेण तभी कर पाता है, जब वह आनन्द स्वरूप परमपिता परमात्मा के प्रेम में तल्लीन हो जाता है; उसे और कुछ सूझता ही नहीं। तन्मय होने से ही वह आनन्दमय हो जाता है। जैसे मिठास इकù◌ा होते-होते, घनीभूत होकर मिसरी, अर्थात मिठासस्वरूप हो जाता है, ऐसे ही जब ईश्वर के प्रति विचार-तरंगों के साधन से मनुष्य की स्मृति घनीभूत या एकाकार हो जाती है तब वह भी आनन्दधन हो जाता है। जैसे लोहे को अग्नि में डालकर धौंकनी से अग्नि को प्रज्ज्वलित कर लोहा भी अग्नि के संग से लाल प्रज्ज्वलित हो जाता है, ठीक वैसे ही आत्मा भी भाव-तरंगों की धौंकनी से ईश्वरीय स्मृति में आनन्दमय ही हो जाती है; वह भी अपने'लाल की लालिमा से लाल" हो जाती है।

स्थायित्व- फिर जितना कोई इसमें स्थिति होता है, उतना ही उस पर पक्का रंग चढ़ जाता है। उतना ही वह आनन्द रस-सम्पन्न हो जाता है। यह स्थायित्व ही परिपक्कवता का साधन है। इससे आनन्द रस आत्मा में बैठ जाता है। इससे आत्मा की सारी रिक्तता आनन्द को स्थान दे देती है। इससे फिर दुःख या अशान्ति के लिए कोई स्थान ही नहीं रह जाता।

इस प्रकार, ईश्वरानुभूति अथवा उस द्वारा आनन्दानुभूति कोई कष्ट-साध्य क्रिया नहीं बल्कि यह सहज साधनों पर आधारित है। यदि हम परमपिता परमात्मा का यथा-सत्य ज्ञान प्राप्त करके, उन ज्ञान-तरंगों द्वारा प्रभु-प्रेम में स्थायित्व का अभ्यास करें तो हमारा परम सौभाग्य!

000